[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3463

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

संगीत और समाज

डॉ. सीमा सक्सेना
राजस्थान संगीत संस्थान जयपुर

प्रकृति का मूल सिद्वान्त है कि मनूष्य ने अपनी नैसेर्गिक आवश्यकताओं के लिये समाज के अवलम्ब को अवधारित किया उसे अपने सुखःदुख की हिस्सेदारी एवं व्यवहारिक बल व असुरक्षा से बचकर के लिये समाज की सृष्टि करनी पड़ी अथवा समाज की शरण में जाना पड़ा। बाल्यकाल, युवावस्था, वृद्वावस्था, अथवा यह कहा जाये कि जीवन के प्रत्येक चरण में मनुष्य को समाज की आवश्यकता नैसर्गिक होती है। समाज यदि जननी है तो व्यक्ति उसका बालक। विकास की प्रारंभिक अवस्था से निरन्तर प्रगति पथ पर बढ़ते हुऐ उसने अपनी आवश्यकताओं के रूप सृजन करना आरंभ किया और–यही सृजन कलाओं का उद्गम स्थल बना।

उसे यह पता ही नहीं चला कि कब उसकी इसी सृजनात्मकता ने कलाओं का रूप लिया फिर वो चाहे स्थापत्य कला, हो या संगीत अथवा चित्रकारी उदाहरण के लिये उसने प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिये गृह उपव्यकाओं को अपना घर बनाया और धीरे–धीरे समूहों में अपने घरों का निर्माण किया और यही निवास–स्थापत्यकला के उत्कृष्ट नमूने बने।

इस तरह समाज का विकास व कलाओं का विकास समानान्तर रूप में प्रगति पाने लगे और प्रत्येक समूह समाज को अपने भिन्न परिवेश, संस्कृति व संगीत से पृथक रूप में पहचाना जाने लगा। यहाँ व्यक्ति का स्वाधिकार कुछ भी नही था जो कुछ था वह समाज था। अपनी भावनाओं की समूह रूप में अभिव्यक्ति कलाओं के सृजन का मूल भूत कारण बनी। अपनी प्रसन्नता, दुख, शोभ आदि भावनाओं को उन्हें किसी ना किसी रूप में अभिव्यक्त करना मनुष्य की आवश्कता बन गई। विकास के क्रम में यही समाज धीरे–धीरे ग्राम, नगर, प्रान्त व देश के रूप में आकृति पाते गये और विविध–विविध नगर, प्रान्तों व देशो की अपनी संस्कृति व संगीत में परिलक्षित होते गये। मानव हद्य की वे आदिम भावनाऍ आज भी हद्य स्पंदन करने में उतनी ही क्षमताऐं रखती है जितनी वे अपनी प्रांरभिक काल मे रखती थी।

कलाकार की कला उसकी इस कल्पना में सहयोग प्रदान करती है करके उसे भावनाओं में लीन होने में और अधिक सहायता देती है और इसका परिणाम यह होता है कि शत–शत युगो की सभ्यता के बोझ से कुछ देर के लिये मुक्त होकर मानव अद्भुत शक्ति का अनुभव करता है। और यही विश्रांति और ताजगी संगीत को जन्म देती है। संगीत का जीवन एवं समाज से आज जैसा घंनिष्ठ सम्बन्ध है, वैसा ही मानव जीवन के आदिम युग में भी विद्यमान था।

संगीत विशिष्ट सामाजिक व भौगोलिक परिस्थितियों की उपज है और यही कारण है कि पूर्वी देशों का संगीत पश्चिमी देशो के लिये तथा पश्चिमी देशों का संगीत पूर्वी देशो के लिये पराया बना रहता है। इसका कारण समय और स्थिति के कारण भिन्न भिन्न समाजो की अपनी मौलिक परम्परा व संस्कार है। संगीत में समाज के यही विशिष्ट संस्कार अभिव्यक्ति पाते है।

समाज की मौलिक परम्पराओं व रीतियों के कारण संगीत परिवर्तन हो जाता है। जैसे वैदिक काल में सर्वाधिक रूप से प्रयोग ईश्वरोपासना के लिये किया जाता था किन्तु कालान्तर में सामाजिक रूचि व परिवेश के अनुसार यह विलासिता व मनोंरजन का पर्याय बन गया। और आधुनिक समाज में संगीत का प्रयोग सामाजिक कल्याण हेतु, ख्याति व यश के लिये तथा धनोपार्जन करने के लिये किया जाता है।

पुरातन युग में संगीत :– मनुष्य जन्म के साथ ही तथा पाषाण काल में ही अपने मुँह से स्वर निकालता है व पृथक–पृथक मुद्राएँ बना कर अपनी भावनाएँ व्यक्त करने का प्रयास करता ही तब उसकी कोई भाषा नहीं होती तथा स्वरों का ज्ञान भी नहीं होता किन्तु शारारिक व मानसिक विकास के साथ–साथ वह संगीत का आनन्द लेने के रूप में अथवा गाने का अनुकरण करने में प्राप्त करता है छोटी–छोटी कविताओं कों जब उसे एक या दो स्वरों का प्रयोग करके उसे सिखाया जाता है तो शिशु आनंदित होकर खेल खेल में स्मरण कर लेता है यह संगीत से उसका प्रथम परिचय है और यह प्राचीन–काल से अनवरत रूप में निरन्तर गतिमान है

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

पूर्व पाषाण काल में मनुष्यों का गाना स्वरों पर ही आधारित था। कोई शिकार कर आनंद में स्वर के टेड़े मेंढ़े आलाप करता वह संगीत ही तो था। इस संगीत की कोई भाषा नहीं थी। उत्तर पाषाण काल में मनुष्यों में सामाजिक विकास प्रांरभ हो गया था इसलिएं सामूहिक संगीत का भी अभ्युदय हो गया था। स्त्रियॉं अपने परिवार के कार्य करते समय तथा पुरुष अपना कार्य करते समय जैसे मिट्टी के बरतन बनाते समय, शिकार के समय स्वरों के माध्यम से ऊर्जा प्राप्त करते थें। वैदिक काल में संगीत अत्यन्त विकसित अवस्था में आ गया वैदिक समाज में ईश्वर उपासना के लिये वैदिक ऋृचाओं का गायन सस्वर व अनेकोनेक के वाद्यों के साथ होता था। प्रातःकाल काम प्रांरभ करने से पूर्व गृह के सभी नर–नारियॉं आबाल वृद्व एक स्थान पर एकत्र होकर इष्ट देव की आराधना गा बजा कर किया करते थें। ऋृवैदिक काल का प्रत्येक गृह संगीत का केन्द्र बना हुआ था

वैदिक काल में समाज के एक उत्सव होता था जिसे 'समन' कहा जाता था यह एक संगीतिक उत्सव था जिसमें सांगातिक आमोद के लिये नारियॉं उत्सव था जाती थी। 'समन' में नारियॉं कई प्रकार के नृत्य व प्रदर्शित किया करती थी और पुरुष गायन प्रस्तुत किया करते थे। पारौणिक काल में भी समन के विकसित रूप 'समज्जा' में विविध क्रीड़ा महोत्सवों का सागंतिक उत्सवों का उल्लेख प्राप्त होंता है।

मध्य युग को तों संगीत का स्वर्णिम युग कहा जाता है। मुगल काल में संगीत अपनी पूर्ण पराकाष्टा पर था समाज में संगीत को जितना उत्कृष्ट स्थान इस युग में प्राप्त हुआ किसी अन्य समय में नहीं। मुगल काल में राजदरबारों के आश्रय में राज गायकों को वादको व नर्तकों को जितना प्रश्रय मिला उसकी तुलना ही नहीं। दरबारी संगीतज्ञ अपने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये नित्य नई रचनाओं, वाद्यों व नृत्य रचनाओं का निर्माण करते थे और इसी माध्यम से संगीत का पुनरूद्धार हुआ। संगीत जो कि मंदिरों में ईशस्तुति के लिये सीमित था वहॉं से उठकर राज दरबारों में आकर जन सुलभ हो गया।

''इस समय संगीत –समाज और व्यक्ति के जीवन में –एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुका था। जन्म से लेकर मरणोपरान्त तक, प्रत्येक संस्कार के समय जो पूजा–पाठ या समारोह मनाया जाता था सभी में संगीत लगभग अनिवार्य हो गया था।''

इस युग में आदान प्रदान गीतों के साथ श्रृंगार पदों का भी समन्वय हुआ।
मुगलकाल में संस्कृति समन्वयवादी रही। हिन्दूराजाओं पर मुगल बादशाहों, का तथा मुगल बादशाहों की संस्कृति का प्रभाव हिन्दू राजाओं पर पड़ने के कारण संगीत में भी समन्वयवादी दृष्टिकोण आया। परिणाम स्वरूप दोनों के सामाजिक संगीत में एक रूपता आने लगी। सभी के वैवाहिक तथा पारिवारिक उत्सवों में प्रयुक्त संगीत में एकरूपता आई सामन्तों के दरबार में रजवाड़ों में तथा मध्यम वर्गीय परिवारों में गाये जाने वाले गीतों, नृत्यों की कथावस्तु भी समान थी। नर नारी ढोल, मंजीरा, बांसुरी आदि वाद्य यन्त्र बजाते हुए नृत्य तथा गायन करते थे।

किन्तु यह भी स्वाभाविक रूप से समाज में परिलक्षित होने लगा कि श्रृंगार युग में राजाओं के संगीत और कला प्रेमी होने के कारण जनता में भी श्रृंगारिक कला प्रेम उजागर था। राज दरबारों के अतिरिक्त ग्राम वधुओं द्वारा गाया जाने वाला लोक संगीत पारम्परिक गीत व खेतों तथा मेलों में गाया जाने वाला लोक संगीत भी प्रचुर मात्रा में समाज में दिखाई दिया जाने लगा। मध्ययुग में भक्ति संगीत की भी प्रचुरता रही। जैसे राम भक्ति सम्प्रदाय, कृष्ण अद्वित सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय, निग्रुण सम्प्रदाय इत्यादि शाखाओं ने संगीत को माध्यम बना कर अपनी भक्ति को आधार बनाया।

इस तरह मुगल तथा मध्य में संगीत में नई विद्याओं, नये वाद्यों ने सुगम तथा शास्त्रीय नई शैलियों का उद्गम हुआ। तथा चरमोंतकर्ष पर संगीत की अवस्था परिलक्षित हुई।

आधुनिक युग व संगीत :– मुगल काल के पश्चात् संगीत में जितना विकास हुआ उसके साहित्य में स्थिति में अवनति भी हुई जो संगीत ईश स्तुत्यगान व मंदिरों में परम्परागत रूप में अक्षुण्ण रहा वह राजदरबारों में जाकर बहुत ही स्तरीय संगीत नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में पुनः परम्पराओं को सहेजना व संगीत के स्तर को शिक्षा के लिये उपयोगी बनाने का महान तम कार्य ऐसे महानतम पुरोधाओं ने किया जिनके प्रयास स्तुति योग्य है। इनमें पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, व विष्णु नारायण भातखण्डें का नाम मुख्य है।

पं. भातखण्डें ने भ्रमण कर विभिन्न स्थानों से संगीत की प्राचीन बंदिशों को सग्रंहित किया और संकलन कर पुस्तकों के रूप में समाज को दिया।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

पं. पलुस्कर ने समाज में संगीत शिक्षा को प्रोत्साहन देने का अनिवर्चनीय कार्य किया, म्यूजिक कालेज की स्थापना कर संगीत की स्थिति समाज में सुदृढ की तथा महिला संगीत शिक्षा पर भी पुस्तक लेखन व प्रयोगात्मक कार्य कर संगीत को योगदान दिया।

स्वातंत्रयोत्तर काल में महाराजाओं ने संगीत क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया परिणाम स्वरूप संगीत राज्याश्रय से निकलकर जन साधारण के सीधे सम्पर्क में आया। इससे पूर्व संगीत मंदिरों के घेरे में तथा कालान्तर में राजा व नवाबों के दरबारों में रहने के कारण जन सुलभ नहीं था।

सामाजिक परिवर्तन के कारण आई सामाजिक क्रांति में कुरीतियों अन्धविश्वासों जैसे पर्दाप्रथा सती प्रथा, मूर्ति पूजा, जांति प्रथा जैसी भावनाओं में जाग्रति के लिये संगीत को माध्यम बनाया गया।

तिलक के शिवाजी व गणेश उत्सव जैसे धार्मिक उत्सवों में संगीत को पर्याप्त स्थान प्राप्त हुआ इनमें सांगीतिक जलसों नाटकों के माध्यम से कुरीतियों को दूर व जन जागरण को संदेश दिया जाता था।

शिक्षा के क्षेत्र में संगीत को स्थान दिलाने का महानतम कार्य महान संगीतज्ञों द्वारा किया गया और संस्थागत शिक्षा प्रणाली में विषय के रूप में संगीत के आने से संगीत को वह सर्वोच्चता प्राप्त हुई जो गत कई दशकों से संगीत को नहीं प्राप्त हुई थीं। विविध स्थानों पर संगीत शालाऐं स्थापित हुई अध्ययन चिन्तन, व शोध ने संगीत की घराने दारी तालीम की जकड़न को समाप्त किया।

संगीत की समाज में प्रतिष्ठा होने के कारण तथा जनसुलभता व लोकप्रियता बढ़ने के कारण संगीत समारोहों, सभाओं, विचार गोष्ठियों और संगीत की प्रतियोगिताओं के आयोजन होने लगे।

जनसंचार माध्यमों में संगीत को पर्याप्त स्थान मिला। आकाशवाणी व दूरदर्शन पर संगीत सभाओं व कार्यक्रमो का प्रसारण होने के कारण समाज ओंकार नाथ ठाकुर, विलायत खाँ जैसे बड़े–बड़े संगीतज्ञों से रूबरू हुआ और कार्यक्रमों का आनंद लेने लगा। विभिन्न कलाकार अपनी अपनी कला की कीर्ति व आर्थिक लाभ के लिये, संगीत सभाओं के आयोजन में माइक्रोफोन, लाउडस्पीकर, टेपरिकार्डर, जैसे वैज्ञानिक इलेक्ट्रानिक उपकरणों का प्रयोग करने लगे। जिससे समाज में संगीत के प्रति श्रोताओं की रूचि का प्रसार हुआ तथा भारतीय संगीत का विकास समाज के सोपानों द्वारा अग्रसर हुआ।

समाज में संगीत को लोकप्रियता हासिल कराने में फिल्म–समाज का योगदान भी अत्यन्त श्रेयस्कर है फिल्मी संगीत दूरदर्शन व रेडियों के माध्यम से जनसाधारण की भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुऐ लोकप्रिय होने लगा। वर्तमान युग में संगीत की स्थिति की प्रगति को अत्यन्त विकसित कहा जा सकता है। पत्र–पत्रिकाऐं, संगीत सभाएँ महान संगीतज्ञों द्वारा संगीत का प्रचार प्रसार संस्थागत शिक्षा में शास्त्रीय संगीत, तथा इन्टरनेट व भौतिक उपकरणों द्वारा भी हो रहा है।

देश विदेश में भारतीय शास्त्रीय का प्रचार प्रसार समाज की सांस्कृतिक घरोहर को प्रचारित कराने का उद्धेश्य संगीत को बढ़ावा देना ही है।

निष्कर्ष रूप में यदि ये कहा जाये कि संगीत व समाज समानान्तर रूप एक दूसरे के पूरक है और समाज के अल्प से अल्प इकाई में भी संगीत व्याप्त है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

आधुनिक समाज में संगीत श्रोता समुदाय ही संगीत कलाकारों के संरक्षक है और यही जन साधारण श्रोता समुदाय संगीत कलाकारों का संगीत का पोषक हैं।